हिन्दी समीक्षा – दायित्व एवं विकास: एक अध्ययन

Dr. Manoj Kumar*

Assistant Professor of Hindi, Gandhi Adarsh College, Samalkha, Haryana

सार – ***किसी भी व्यक्ति या वस्तु का परखना, निरखना, उसके गुण-दोष एवं रंग-रूप को सतही धरातल पर विवेचित करना-सहज मानवीय स्वभाव है, लेकिन साहित्यिक समीक्षक का दायित्व मात्र इतना ही नहीं होता, उसे तो तटस्थ भाव से रचना की गहन संरचना में प्रवेश कर उसके भीतरी गवांक्षों को जांचना, परखना और सम समायिक प्रासंगिकता के अनुकूल उसकी अर्थवत्ता को स्थापित करना होता है। समीक्षा का मूल उद्देश्य -'कवि (रचनाकार) की कृति का सभी दृष्टिकोणों से आस्वाद कर पाठकों को उसी प्रकार के अस्वाद में सहायता देना तथा उनकी रुचि को परिमार्जित करना एवं साहित्य की गतिविधि निर्धारित करने में योगदान देना होता है।"[1] अतः समालोचना केवल किसी कवि का हाल ही नहीं बताती वरन साधारण पाठक समाज में औचित्य भी बढ़ाती है...... समालोचक का कर्तव्य है कि वह ग्रंथों के ठीक-ठीक गुण दोष बता कर ऐसे मनुष्यों की रुचियों की भी उचित उन्नति करे।"[2]***

---------------------------------X---------------------------------

प्रत्येक युग में कोई न कोई प्रतिभाशाली लेखक ऐसा अवश्य होता है, जो पाठक को अपनी निष्पक्षीय आलोचना द्वारा कृत्ति पर पडे सघन कोहरे में पथभ्रष्ट होने से बचाता है। .....प्रत्येक रचना में उसके रचयिता का कोई न कोई ध्येय अवश्य निहित होता है। इस संबंध में पाठक, लेखक और आलोचक के दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। आलोचक अपनी आलोचना द्वारा लेखक का एक प्रकार से पुनः संस्कार करता है.....आलोचक अपने आलोच्य विषय से पहले घनिष्ठता प्राप्त करता है, उसके अन्दर पैठ कर उसे देखता है, उसके उपरान्त उसका मूल्य निर्धारित करता है। जहां भावनाओं का उद्गम होता है वहीं आलोचना का उद्गम भी होता है। सृष्टि की प्रकिया का नाम ही साहित्य है और उसकी प्रतिक्रिया के मूल में जो भावना निहित है वही आलोचना (समीक्षा) है।[3]

साहित्य - सृजन के क्षेत्र में समीक्षक का (अप्रत्यक्ष किन्तु) महत्वपूर्ण यागे दान होता है। कृति के सार्थक एवं निष्पक्षीय विश्लेषण द्वारा -'साहित्यिक अराजकता पर नियंत्रण कर सत्साहित्य को प्रचारित एवं प्रसारित करने का कार्य समीक्षक ही कर सकता है। 'समीक्षा' ही साहित्य का वह माध्यम है, जिसके द्वारा समाज की साहित्यिक रुचि का संशोधन और परिमार्जन होता रहता है। समीक्षक - रचना को एक 'व्यापक-परिदृश्य' में देखने के लिए एक ऐसी समन्वित दृष्टि विकसित कराता है, जो साहित्य के मात्र बाहरी संरचनात्मक स्वरुप के दर्पणीय अक्स को ही नहीं, अपितु उसके भीतरी 'एक्सरे को उभारती है। रचनाधर्मी, जो कुछ भी अपनी रचना के माध्यम से कहना चाहता है, उसे पूरी उर्जा और संलग्नता से व्यक्त करने का हर सम्भव प्रयास करता है, दरअसल रचनाकार और समीक्षक- दोनों का कार्य अन्योश्रित भी कहा जा सकता है। "सही रचना स्वयं अपनी आलोचना से गुजरती है और इसी प्रकार एक सही आलोचना की भी अपनी रचना-यात्रा होती है.....दोनों ही जीवन सापेक्ष दृष्टि रखकर अपनी सार्थकता प्रमाणित कर सकती हैं। दोनों में एक द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध होता है।"[4]

जिस तरह रचना आलोचना को उत्तेजित करती है, उसी तरह आलोचना भी रचना को आत्मसात् किये बिना सफल नहीं हो सकती। समीक्षक को समीक्षा करने से पूर्व विषय सम्बन्धी विविध ज्ञानानुशासनों का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है, क्योंकि वह रचना विशेष का मात्र पाठक नहीं है, अपितु उसकी भीतरी खोज का अन्वेषक है, उसे रचना के सामाजिक सरोकार और गहन संरचनात्मक विधियों का ज्ञाता होना ही चाहिए, क्योंकि "आलोचना कोई बाहर की चीज़ न होकर खुद लेखक के सृजनात्मक एडवेंचर से जुड़ी है-स्वयं लिखने के कार्य में अन्तर्निहित है। इसलिए विचारों, सिद्धान्तों और दर्शन से अलग लेखक की आलोचना उसकी कल्पना के बीचों-बीच केन्द्रित रहती है।"[5]

आचार्य शुक्ल जिन्हें हिन्दी समीक्षा-साहित्य के मूर्धन्य समीक्षक का मान प्राप्त है-का भी मानना है कि....."केवल गुण-दोष दिखाने वाली, लेखों या पुस्तकों की धूम तो थाड़े ही दिनों रहती थी पर किसी कवि की विशेषताओं का दिग्दर्शन कराने वाली उसकी विचारधारा में डूब कर उसकी

अन्तवृत्तियों की छान-बीन करने वाली पुस्तक, जिसमें गुण-दोष का कथन भी आ जाता था, स्थायी साहित्य में स्थान प्राप्त करती है, क्योंकि समालोचना के दो प्रधान कार्य हैं- निर्णयात्मक (जुडिश्यिल मेथड्) और व्याख्यात्मक (इंडक्टिव क्रिटिसिज्म) और दोनों में से एक का भी अभाव रचना की सापेक्षता को समाप्त कर सकता है।''[6]

रचना के प्रति पाठक की उत्कण्ठा जगा उसे रचना की ओर प्रेषित करने वाली प्रक्रिया-'समीक्षा'-की एक विस्तृत एवं समृद्ध परम्परा रही है। भारतीय साहित्य में 'संस्कृत' काव्य-शास्त्रियों ने -'रस, ध्वनि, अलंकार, रीति, औचित्य एवं वक्रोक्ति इत्यादि अनेक साहित्य-सिद्धान्तों की स्थापना कर 'पाठ-प्रक्रिया' की एक स्वस्थ परम्परा निहित की थी। उन द्वारा प्रचलित- 'आचार्य पद्धति, टीका-पद्धति, शास्त्रार्थ पद्धति, सूक्ति पद्धति, खण्डन-पद्धति और लोचन-पद्धति- छः ऐसी पद्धतियां (समीक्षा) हैं, जिनका अनुसरण कर अनेक आधुनिक समीक्षकों ने साहित्य में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किया, यथा- संस्कृत लक्षण ग्रन्थों को ही आधार बना- आचार्य शुक्ल ने-'रस मीमांसा, गुलाब राय ने 'नवरस', कन्हैया लाल पौद्वार ने' काव्य कल्पद्रुम और अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध ने 'रसकलश, की रचना की, तो टीका पद्धति को अपना कर 'पद्मसिंह शर्मा ने 'बिहारी सतसई' और रत्नाकर ने 'बिहारी रत्नाकर' इत्यादि समीक्षाएँ लिखी। इसी तरह शास्त्रार्थ-पद्धति पर - 'बिहारी और देव और देव और बिहारी इत्यादि, सूक्ति-पद्धति पर 'सूर-सूर तुलसी ससी, उड्गन केशवदास इत्यादि, खण्डन पद्धति पर पं. जगन्नाथ ने चित्र मीमांसा खण्डन इत्यादि समीक्षाएं रची। लाचे न-पद्धति का आधुनिक समीक्षकों ने अधिक प्रयोग किया, क्योंकि यह पद्धति 'आलोचक-आलोच्य' विषय को अर्थवत्ता प्रदान कर रचना की अन्तर्दृष्टि की विस्तृत व्याख्या करने में अधिक सक्षम एवं सार्थक सिद्ध हुई।

आधुनिक हिन्दी समीक्षा में संस्कृत एवं पाश्चात्य समालोचना का सम्मिश्रित प्रभाव परिलक्षित होता है क्योंकि पाश्चात्य समीक्षा-शैली की विवेचन पद्धति संस्कृत की तरह एकपक्षीय एवं स्थूल न होकर बहुआयामी एवं सूक्ष्म अन्वेषणीय गुणों से परिपूर्ण थी। इसलिए संस्कृत एवं रीतिकालीन 'अलंकार एवं रसवादी' समीक्षा पद्धतियां आधुनिक युग तक पहुँचते-पहुँचते अनेक विश्लेषणात्मक धरातलों पर विस्तृत होती चली गई।

युग प्रवर्तक भारतेन्दु ने 'हरिश्चन्द्र मैंगजीन' में 'समालोचना संभूषिता' और कवि वचन सुधा में 'हिन्दी कविता' नामक आलोचनात्मक लेख लिख कर 'हिन्दी में सम्यक् एवं स्वतन्त्र समीक्षा-साहित्य का सूत्रपात किया। मुद्राराक्षस की भूमिका में 'नाटक' नामक निबन्ध के माध्यम से उन्होंने ही 'सैद्धान्तिक समीक्षा' का प्रारम्भ किया, जिससे प्रेरित होकर बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चैधरी इत्यादि कई साहित्यकार इस क्षेत्र की ओर अकर्षित तो हुए पर हिन्दी में नए ढंग की आलोचना का प्रारम्भ गंगाप्रसाद अग्निहोत्री की 'समालोचना' और अम्बिकादत्त ब्यास की 'गद्य-काव्य-मीमांसा' से ही माना जाता है। व्यावहारिक समीक्षा के क्षेत्र में राधाकृष्ण का नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय है। भारतेन्दु युगीन आलोचना के इन प्रारम्भिक प्रयासों ने भविष्य मे समीक्षा साहित्य के लिए विविधामुखी द्वार खोल दिये।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से समीक्षा को नई 'दिशा' और 'दशा' प्रदान की। समीक्षा-साहित्य का पुस्तक रुप में आरम्भ महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'हिन्दी कालिदास की समालोचना' से ही हुआ। द्विवेदी जी की 'हिन्दी नवरत्न' जैसी गम्भीर और 'कवि और कविता' जैसी सैद्धान्तिक समीक्षाओं के समानान्तर मिश्र बन्धुओं की 'मिश्र बन्धु विनोद' जैसी ऐतिहासिक समीक्षाएं भी सामने आई, जिन्होंने परम्परित एवं शास्त्रीय दोनों पद्धतियों को समाहित कर समीक्षा-साहित्य को एक कदम ओर आगे बढाया। द्विवेदी युग में पुस्तकों एवं कवियों पर तुलनात्मक आलोचनाएं भी लिखी गई, जिनमें श्यामसुन्दर दास की- 'साहित्यालोचना', हिन्दी भाषा का विकास, अयोध्या सिंह उपाध्याय की 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, 'संदर्भ सर्वस्व', भगवानदीन की 'रामचन्द्रिका' और 'कवि प्रिया' की टीकाएं इत्यादि प्रमुख हैं।

हिन्दी समीक्षा-साहित्य में 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' के पदार्पण ने 'समीक्षा-साहित्य को 'नई उम्मीदें' प्रदान की। यद्यपि उन्होंने- 'सैद्धान्तिक-आलाचे ना-सम्बन्धी' कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं रचा, किन्तु उनके अनेक निबन्धों एवं ग्रन्थों में 'काव्य-विवेचन-सम्बन्धी' विविध विचार उपलब्ध होते हैं। काव्य सम्बन्धी उनकी गहन-गम्भीर एवं व्यापक समीक्षा-''जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस-दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति-साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है उसे कविता कहते है।''[7] आज भी कविता की सर्वोपरि परिभाषा कहलाती है। प्राच्य एवं पाश्चात्य समीक्षा-पद्धतियों के समन्वित एवं व्यापक रुप को उनके 'जायसी, तुलसीदास, सूरदास इत्यादि कवियों पर लिखे समीक्षात्मक ग्रन्थों में निहारा जा सकता है। उन्होंने समीक्षा के अन्तर्गत - ''रचयिता, तत्कालीन परिस्थितियाँ, पूर्ववर्ती साहित्यिक परम्परा, सम्बन्धित दार्शनिक सम्प्रदाय, मूल विचारधारा एवं भाव-पक्ष-विवेचन को अनिवार्य माना।

आचार्य शुक्ल की समीक्षा-पद्धति पर शिवकुमार का कहना है कि -"आलोचना सम्राट आचार्य शुक्ल का हिन्दी आलोचना-क्षेत्र में अद्वितीय स्थान है।....उन्होंने आलोचना के नवीन मानदण्ड तथा सुविकसित समीक्षा पद्धतियों को निर्मित किया.....हिन्दी आलोचना को नवीनदिशाएं प्रदान की।......वे रसवादी हैं और साथ-साथ सौन्दर्यवादी भी हैं, किन्तु लोक संग्रहात्मकता की भावना उनकी आलोचना का अभिन्न अंग बनी रही हैं।.......आलोचना के सैद्धान्तिक और प्रायोगिक दोनों रुपो में शुक्लजी दुर्लघ्य है।"[8]

शुक्ल जी की व्यावहरिक, व्याख्यात्मक एवं सैद्धान्तिक समीक्षा पद्धति को आधार बना कर बाबू गुलाब राय ने 'काव्य के रुप', 'सिद्धान्त और अध्ययन', 'नव-रस', 'हिन्दी नाट्य विमर्श, हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास-पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने- "बिहारी की वाग्विभूति', हिन्दी साहित्य का अतीत, "वाङ्मय विमर्श', कृष्णशंकर शुक्ल ने आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, नलिनमोहन ने समालोचना तत्व, लक्ष्मीनारायण सुधांशु ने 'काव्य में अभिव्यन्जनावाद', जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन और रामकुमार वर्मा ने 'कबीर का रहस्यवाद इत्यादि अनेक महत्वपूर्ण समीक्षाएँ की।

आचार्य शुक्ल के बाद समीक्षा की गति अवरुद्ध नहीं हुई, अपितु बहुत से प्रतिभा सम्पन्न शुक्लोत्तर समीक्षकों, यथा-नन्ददुलारे वाजपेयी, आचार्य नागेन्द्र एवं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, शान्तिप्रिय द्विवेदी, शिवदान सिंह चैहान, डॉ. राम विलास शर्मा, यशपाल, नामवर सिंह, प्रकाशचन्द्र गुप्त, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, इन्द्रनाथ मदान, गंगा प्रसाद, भगीरथ मिश्र, गणपति चन्द्र गुप्त, आ. विनयमोहन शर्मा, डॉ. दशरथ ओझा, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, डॉ. शशिभूषण पाण्डेय शीतांशु, डॉ. रमेश कुन्तल मेघ, नेमिचन्द्र जैन, रामस्वरूप चतुर्वेदी, अशोक वाजपेयी, धर्मवीर भारती, परमानन्द श्रीवास्तव, डॉ. हरमहेन्द्र सिंह बेदी इत्यादि की समीक्षाओं द्वारा हिन्दी एवं अहिन्दी भाषी क्षेत्रों से समीक्षा और अधिक निखरे और नवीन रूपों में विस्तृत होने लगी।

'इंदु' नामक पत्रिका के माध्यम से स्वच्छन्दतावादी/छायावादी समीक्षा पद्धति का आविर्भाव हुआ। जयशंकर प्रसाद इस समीक्षा पद्धति के प्रवर्तक माने गए, जिन्होंने 'काव्य का उद्देश्य- 'सौन्दर्य'- माना और इसी दृष्टिकोण को मध्यस्थ रख समालोचना पद्धति का निर्माण किया।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'नया साहित्य नये प्रश्न, प्रेमचन्द्र, आधुनिक काव्य, आधुनिक हिन्दी साहित्य', डॉ. नगेन्द्र ने 'विचार और विश्लेषण, काव्य चिन्तन, नयी समीक्षा, नये संदर्भ, भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की समीक्षा, आधुनिक हिन्दी नाटक, भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा, कामायनीः अध्ययन की सीमाएँ, तो आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने- 'हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, कबीर, विचार और वितर्क, कल्पलता, अशोक के फूल' इत्यादि लिख कर सौष्ठववादी समीक्षा पद्धति को विकसित किया।

छायावादी काव्य की सहानुभूतिपूर्ण समीक्षा लिखने का सर्वप्रथम श्रेय शान्तिप्रिय द्विवेदी की-'सामयिकी संचारिणी, कवि और काव्य और साहित्यिकी' को जाता है।

1936 में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना के साथ ही माक्र्सवादी समीक्षा-पद्धति का साहित्य में पदार्पण हुआ। इस द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को आधार बनाकर शिवदान सिंह ने 'प्रगतिवाद, साहित्य की परख, साहित्य और समाज, साहित्य और विद्यार्थी, हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, डॉ. रामविलास शर्मा ने 'प्रगति और परम्परा, जनसंग्राम और नारी, प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ, जीवन और साहित्य', यशपाल ने 'बात बात में बात, पूंजीवाद की योग्य महिला और समाजवाद की आत्मनिर्भर नारी, राम-राज्य और मजदूर राज की नैतिकता-इत्यादि, माक्र्सवादी आलोचनाएँ लिखी। इन समीक्षकों का उद्देश्य-साहित्य के ऐतिहासिक एवं गतिशील संबंधों को उद्घाटित कर समाज में नयी सचेतना को प्रवाहित करना था।

माक्र्सवादी आलोचना जब सामाजिक तथ्यों को महत्व देकर साम्यवादी समीक्षा को अपना रही थी, तभी कला एवं साहित्य को मानव-मन की अतृप्त लालसाओं का परिणाम मानने वाले साहित्यकारों ने 'मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा पद्धति को अपनाया।

फ्रायड, एडलर, युग जैसे मनोविश्लेषकों की इद्, अहम्, पराहम्, स्वप्न, कामनाओं की गहन अन्तस चेष्टाओं, कुष्ठाओं, विजय-भावना, ईडिप्स-इत्यादि विविधामुखी मानसिक ग्रन्थिओं को आधार बना कर अज्ञेय ने 'त्रिशंकु', आत्मनेपद, इलाचन्द्र जोशी ने -'साहित्य सर्जना, देखा-परखा, साहित्य चिन्तन', डॉ. देवराज उपाध्याय ने -'आधुनिक साहित्य का मनोविज्ञान' इत्यादि आलोचना ग्रन्थ रचे।

1936 के बाद प्रभाववादी और चरितमूलक समीक्षा ग्रन्थ सामने आए। ऐसी समीक्षाओं में आलोचक 'सिर्फ' आलोच्य कृति के विभिन्न प्रभावों' को ही दर्शाता है। इस समीक्षा में रचनाकार की अपेक्षा समीक्षक के मनोभाव का प्रधान्य होता है। शांति प्रिय द्विवेदी की 'छायावादी कवियों की आलोचना' और भगवतशरण उपाध्याय की 'गुरु भक्तसिंह' प्रभाववादी

www.ignited.in

समीक्षाएं हैं, तो गंगाप्रसाद पाण्डेय की 'महाप्राण निराला, डॉ. पद्मसिंह शर्मा की 'राधिकारमण प्रसाद सिंह: व्यक्तित्व एवं कृतित्व' चरित मूलक समीक्षाएं हैं।

अनुसंधानपरक अथवा शोधपरक समीक्षा पद्धति का श्रीगणेश - 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' की स्थापना के साथ हुआ। 1930 में मोहिउद्दीन कादरी ने (लन्दन से) 'भारतीय ध्वनियों पर शोध लिख इस समीक्षा पद्धति का सूत्र पात्र किया। डॉ. जे. एन. कारपेन्टर ने भी लंदन विश्वविद्यालय से 'तुलसीदास का धर्म दर्शन' नामक शोध ग्रंथ पर 'डाक्टर ऑफ़ डिविनिटी' की उपाधि प्राप्त की। भारत में सर्वप्रथम 'प्रयाग विश्वविद्यालय' में ऐसे शोधकार्य आरम्भ हुए। डॉ. बाबूराम सक्सेना ने 'अवधी का विकास' नामक शोध ग्रन्थ पर सबसे पहले डी. लिट्. की उपाधि प्राप्त की। इसके पश्चात् तो हिन्दी साहित्य में शोध कार्य की होड सी लग गई, जो अब तक अबाध एवं तीव्र गति से बढ़ रही है। इस 'पद्धति' ने समीक्षा के अनेक नए आयाम विस्तृत किए। विभिन्न साहित्यिक काल, रचनाकार और उनकी गद्य-पद्य कृतियाँ-सभी इस विषय क्षेत्र के अन्तर्गत समाहित हो गए। भाषा विज्ञान, सौन्दर्य शास्त्र, शैली विज्ञान, पाठालोचन, नव्य आलोचना इत्यादि अनेक 'वाद' एवं 'वाद मुक्त' समीक्षाओं से हिन्दी-सेवी हिन्दी साहित्य का दामन भरते जा रहे हैं। नयी-नयी साहित्यिक विधाएं एवं नित-प्रति परिवतर्न शील समाज के साथ-साथ परिवर्तित होते साहित्य को नित नवीन समीक्षा पद्धतियों के माध्यम से उजागर कर पाठक के लिए सार्वग्राह्य बनाने का कार्य हिन्दी और अहिन्दी भाषी भारत स्थित ही नहीं अपितु प्रवासी साहित्यकार भी कर रहे हैं और करते जाएंगें, क्योंकि व्यक्ति हो या वस्तु उसे परखना, निरखना और विवेचित करना तो मानव स्वभाव है।

संदर्भ:

1. बाबू गुलाब राय, हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, पृष्ठ 183-184.

2. मिश्रबन्धु, आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे, पृष्ठ 216.

3. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय हिन्दी साहित्य कोश, (भाग एक), सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा, आलोचना पृष्ठ 121.

4. निर्मला जैन, आधुनिक हिन्दी समीक्षा, पृष्ठ 9 (भूमिका)

5. निर्मल वर्मा, आधुनिक हिन्दी समीक्षा, सम्पादक निर्मला जैन, पृष्ठ 30.

6. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 359.

7. म्रत्युंजय उपाध्याय, हिन्दी निबन्ध का इतिहास, पृष्ठ 146.

8. शिवकुमार, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 597-600.

Corresponding Author

Dr. Manoj Kumar*

Assistant Professor of Hindi, Gandhi Adarsh College, Samalkha, Haryana